सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

1961
27 अप्रैल

राम सरन लाल एवं अन्य
बनाम
मोसमात डोमिनी कुआर एवं अन्य

(बी. पी. सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश, ए. के. सरकार, के. सी. दास गुप्ता, एन. राजगोपाला अय्यंगर एवं जे. आर. मुधोलकर, न्यायाधीश)

पंजीकरण-विक्रय-कब पूर्ण होता है-यदि केवल पंजीकरण की तिथि पर ही पूर्ण माना जाए-शुफा-भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का XVI), धाराएं 47 और 61।

पी ने 31 जनवरी, 1946 को डी के पक्ष में एक घर के संबंध में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया और उसी दिन उसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया। विक्रय विलेख के निष्पादन की जानकारी होने पर, अपीलकर्ता ने, जिसके पास शुफा का अधिकार था, 2 फरवरी, 1946 को *'तलब-ए-मवासिबत'* की। विलेख को 9 फरवरी, 1946 को पंजीयक की पुस्तकों में दर्ज किया गया, और इसके साथ ही पंजीकरण अधिनियम की धारा 61 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकरण पूर्ण हो गया। अपीलकर्ता ने शुफा के लिए एक वाद दायर किया। डी ने इस आधार पर वाद का विरोध किया कि विक्रय 9 फरवरी, 1946 को पूर्ण हुआ था, और 'तलब' समय से पहले की गई थी। अपीलकर्ता का तर्क था कि पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 के आलोक में, एक पंजीकृत दस्तावेज उस समय से प्रभावी होता है जब वह अन्यथा प्रभावी होता और विक्रय उसके निष्पादन की तिथि पर ही पूर्ण हो गया था।

अभिनिर्धारित (सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश, सरकार और मुधोलकर, न्यायाधीशों के अनुसार) कि विक्रय केवल 9 फरवरी, 1946 को पूर्ण हुआ था, जब पंजीकरण पूरा हुआ, इसलिए 'तलब' समय से पहले की गई थी और वाद विफल होना चाहिए। धारा 47 केवल एक दस्तावेज को पंजीकृत होने पर उस तिथि से प्रभावी होने की अनुमति देती है जो उसके

पंजीकरण की तिथि से पहले की हो सकती है, यह यह नहीं बताती कि विक्रय कब पूर्ण माना जाएगा। एक विक्रय जिसका पंजीकरण अनिवार्य है, तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि विलेख का पंजीकरण पूर्ण न हो जाए।

'तिलकधारी सिंह बनाम गौर नारायण', ए.आई.आर. (1921) पटना 150, *'नरेशचंद्र दत्त बनाम गिरीशचंद्र दास',* (1935) आई.एल.आर. 62 कलकत्ता 979, और *'गोवर्धन बर बनाम गुना धर बर',* आई.एल.आर. (1940) II कलकत्ता 270, को अनुमोदित किया गया।

'बिंदेश्वरी बनाम सोमनाथ भद्री', ए.आई.आर. (1916) इलाहाबाद 199 और *'गोपाल राम बनाम लक्ष्मी हिमीर',* ए.आई.आर. (1926) इलाहाबाद 549, को विभेदित किया गया।

दास गुप्ता और अय्यंगर, न्यायाधीशों के अनुसार—विक्रय निष्पादन के दिन ही पूर्ण हो गया था और 'तलब' सही समय पर की गई थी। धारा 61 का उस समय से कोई लेना-देना नहीं था जब पंजीकृत विलेख द्वारा प्रमाणित विक्रय पूर्ण हुआ था; यह केवल इस तथ्य को संदर्भित करता है कि पंजीकरण अधिकारी ने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। धारा 47 यह प्रावधान करती है कि विक्रय कब पूर्ण माना जाएगा। विक्रय के प्रभावी होने के समय और उसके पूर्ण होने के समय के बीच कोई अंतर नहीं था। धारा 47 के तहत वह निर्णायक परीक्षण, जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि पंजीकृत दस्तावेज किस समय से प्रभावी होगा या कब पूर्ण माना जाएगा, पक्षकारों का आशय था। विक्रय विलेख यह दर्शाता है कि पक्षकारों का आशय था कि विलेख निष्पादन की तिथि से ही प्रभावी होना चाहिए।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1959 की दीवानी अपील संख्या 104

पटना उच्च न्यायालय के 19 दिसंबर, 1956 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील, जो 1949 की अपीलीय डिक्री संख्या 632 से उत्पन्न हुई है।

अपीलकर्ताओं के लिए: *एम. सी. सीतलवाड़, भारत के महान्यायावादी और आर.सी प्रसाद।*

उत्तरदाता संख्या 1 के लिए: *एस. पी. वर्मा।*

मध्यवर्ती के लिए: *एन. एस. बिंद्रा और डी. गुप्ता।*

27 अप्रैल, 1961। सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश, सरकार और मुधोलकर, न्यायाधीशों का निर्णय न्यायमूर्ति सरकार द्वारा सुनाया गया। दास गुप्ता और अय्यंगर, न्यायाधीशों का निर्णय न्यायमूर्ति अय्यंगर द्वारा सुनाया गया।

सरकार, न्यायाधीश— इस मुकदमे के सभी पक्षकार हिंदू हैं, लेकिन इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रथा के अनुसार उन पर शुफा का मुस्लिम कानून लागू होता है, और न ही इस बात पर कि अपीलकर्ताओं के पास शुफा का अधिकार था। एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या पहली मांग, जिसे 'तलब-ए-मवासिबत' कहा जाता है और जिसे अधिकार लागू करने के लिए विक्रय पूर्ण होने के बाद किया जाना आवश्यक है, विक्रय की पूर्णता से पहले की गई थी या उसके बाद। मांग की गई थी, इस पर कोई विवाद नहीं है, लेकिन विवाद इस बात पर है कि विक्रय कब पूर्ण हुआ था।

अपीलकर्ताओं का आवासीय घर पांडे नामक व्यक्तियों के घर से सटा हुआ था। 31 जनवरी, 1946 को, पांडे पक्ष ने अपने उक्त घर के संबंध में उत्तरदाता-क्रेता के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया। अपीलकर्ता इस विक्रय के कारण शुफा के अधिकार का दावा करते हैं। विलेख में उल्लेखित प्रतिफल 2,000 रुपये था। उस घर पर एक मौजूदा बंधक था और विलेख में यह प्रावधान किया गया था कि प्रतिफल की राशि में से 200 रुपये उत्तरदाता-क्रेता के पास उस बंधक को चुकता करने के लिए छोड़ दिए जाएंगे। विलेख में यह भी वर्णित था कि पांडे पक्ष ने 400 रुपये प्राप्त कर लिए थे और "शेष 1,400 रुपये (चौदह सौ रुपये) नकद रूप में समान मूल्यों के विनिमय के समय, (अर्थात) इस विलेख की रसीद (सौंपने) के समय प्राप्त किए गए... प्रतिफल की पूरी और संपूर्ण राशि प्राप्त होने पर हमने उक्त दावेदार को हमारे, निष्पादनकर्ताओं और हमारे वारिसों तथा प्रतिनिधियों के स्थान पर पूर्ण स्वामी के रूप में इस बेची गई संपत्ति का कब्जा और अधिभोग सौंप दिया है"। विलेख में आगे कहा गया था, "यह विक्रय विलेख उस तिथि से प्रभावी होता है जब हम निष्पादनकर्ताओं ने उस

पर अपने हस्ताक्षर किए थे। इस बेची गई संपत्ति के संबंध में हमारे, हमारे वारिसों के जो भी अधिकार थे... वे अब समाप्त, निष्प्रभावी और शून्य हो गए हैं और वही अब दावेदार को हस्तांतरित और उसके द्वारा अधिग्रहित कर लिए गए हैं"। "दावेदार" शब्द से उत्तरदाता-क्रेता को संदर्भित किया गया था।

विलेख को इसके निष्पादन के दिन ही पांडे पक्ष द्वारा पंजीकरण के लिए पंजीकरण कार्यालय में प्रस्तुत किया गया था और आवश्यक प्रविष्टियाँ तथा प्रतियाँ बनाने के लिए इसे पंजीयक के पास छोड़ दिया गया था, जिसके बदले पांडे पक्ष को एक रसीद दी गई थी। 2 फरवरी, 1946 को विक्रय विलेख के निष्पादन की सूचना मिलने पर अपीलकर्ताओं ने 'तलब-ए-मवासिबत' की। *7* फरवरी, 1946 को पंजीकरण कार्यालय द्वारा पांडे पक्ष को दी गई रसीद उन्होंने उत्तरदाता-क्रेता को सौंप दी, जिसके बाद क्रेता ने विलेख की शर्त के अनुसार शेष राशि का भुगतान कर दिया। 9 फरवरी, 1946 को दस्तावेजों को पंजीयक की पुस्तकों में दर्ज किया गया और इसके साथ ही पंजीकरण अधिनियम की धारा 61 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकरण पूर्ण हो गया। इसके पश्चात, उत्तरदाता-क्रेता ने 13 फरवरी, 1946 को पंजीयक कार्यालय से विक्रय विलेख प्राप्त किया।

अपीलकर्ताओं ने 9 सितंबर, 1946 को शुफा के लिए अपना वाद दायर किया। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वाद को डिक्री कर दिया गया था और इस निर्णय को प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी बरकरार रखा। हालांकि, उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों को रद्द कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप वाद खारिज हो गया और अब अपीलकर्ता इस न्यायालय में आगे की अपील के लिए आए हैं।

मुल्ला के 'प्रिंसिपल्स ऑफ मोहम्मडन लॉ' में शुफा के मुस्लिम कानून को इन शब्दों में वर्णित किया गया है: "शुफा का अधिकार केवल एक वैध, पूर्ण और *वास्तविक* विक्रय से ही उत्पन्न होता है"। कानून के इस कथन को दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया है और इसकी सटीकता पर कोई प्रश्न नहीं है। इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है

कि उत्तरदाता-क्रेता को किया गया विक्रय वैध और *वास्तविक* था। इस बात पर भी सहमति है कि शुफा के अधिकार का प्रयोग करने से पहले आवश्यक शर्तों में से एक पूर्व-क्रयाधिकारी द्वारा प्रारंभिक मांग है और ऐसी मांग विक्रय के पूर्ण होने के बाद की जानी चाहिए। हमारे समक्ष अपीलकर्ताओं की ओर से इस आधार पर बहस की गई है कि यह विक्रय संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 द्वारा शासित था। हम भी इसी आधार पर आगे बढ़ेंगे।

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 54 यह प्रावधान करती है कि 100 रुपये और उससे अधिक मूल्य की मूर्त अचल संपत्ति का विक्रय, जैसा कि वर्तमान मामले से संबंधित घर है, केवल एक पंजीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है। इस अधिनियम की धारा 3 "पंजीकृत" को दस्तावेजों के पंजीकरण को विनियमित करने वाले तत्कालीन लागू कानून के तहत पंजीकृत के रूप में परिभाषित करती है। वर्तमान मामले में, इसका तात्पर्य पंजीकरण अधिनियम, 1908 से है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकरण तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि पंजीकृत किए जाने वाले दस्तावेज को पंजीकरण कार्यालय के रिकॉर्ड में दर्ज न कर लिया जाए, जैसा कि उस अधिनियम की धारा 61 में प्रावधान है। इसलिए उच्च न्यायालय में यह तर्क दिया गया था कि जब कोई विक्रय एक पंजीकृत लिखत द्वारा किया जाना हो, तो वह केवल तभी पूर्ण होता है जब विक्रय लिखत को पंजीकरण कार्यालय की पुस्तकों में दर्ज कर लिया जाए। उच्च न्यायालय ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में विक्रय, विक्रय लिखत के पंजीकरण के पूर्ण होने पर पूर्ण हुआ, जो कि 9 फरवरी, 1946 को किया गया था जब लिखत को पंजीकरण कार्यालय की पुस्तकों में दर्ज किया गया था। इस परिप्रेक्ष्य में, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपीलकर्ता अपने शुफा के अधिकार को लागू करने के हकदार नहीं थे क्योंकि उन्होंने कानून की आवश्यकता के अनुसार विक्रय पूर्ण होने के बाद प्रारंभिक मांग नहीं की थी, बल्कि उससे पहले, अर्थात 2 फरवरी, 1946 को की थी।

उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण के उत्तर में, अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान महान्यायावादी का कहना है कि उच्च न्यायालय ने पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 की अनदेखी की, जिसका प्रभाव यह था कि एक पंजीकृत दस्तावेज उस समय से प्रभावी होता है जब से वह प्रभावी होना शुरू होता यदि उसके पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होती, न कि उसके पंजीकरण के समय से। उनका तर्क है कि एक बार जब कोई दस्तावेज पंजीकृत हो जाता है, जैसा कि इस मामले में विक्रय विलेख था, तो वह उस समय से प्रभावी होना शुरू हो जाता है जब से वह अन्यथा प्रभावी होता और इसलिए, इस मामले में स्थिति यह है कि विक्रय 31 जनवरी, 1946 को प्रभावी और अतः पूर्ण हो गया। विद्वान महान्यायावादी आगे तर्क देते हैं कि विक्रय विलेख की उचित व्याख्या यह थी कि यह उसी दिन से प्रभावी हो गया जिस दिन इसे निष्पादित किया गया था और यदि ऐसा नहीं था, तो यह विक्रय नहीं था बल्कि केवल विक्रय का एक करार हो सकता था, जिस स्थिति में उनके मुवक्किल, हालांकि यह वर्तमान वाद विफल हो सकता है, यदि वे चाहें तो शुफा के अपने अधिकार को लागू करने के हकदार होंगे जब उस करार के अनुसरण में विक्रय पूर्ण हो जाएगा। इस तर्क के समर्थन में कि पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 के आलोक में वर्तमान मामले में विक्रय को उस दिन पूर्ण माना जाना चाहिए जिस दिन लिखत निष्पादित किया गया था, विद्वान महान्यायावादी ने *'बिंदेश्वरी बनाम सोमनाथ भद्री'*[(1)] *और 'गोपाल राम बनाम लक्ष्मी मिसिर'*[(2)] पर भरोसा किया।

हम नहीं मानते कि विद्वान महान्यायावादी का तर्क सुदृढ़ है। हम यह मान लेते हैं कि विक्रय लिखत के बारे में विद्वान महान्यायावादी की यह व्याख्या सही है कि इसके तहत संपत्ति को लिखत की तिथि पर ही हस्तांतरित करने का आशय था। हालाँकि, पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 यह नहीं बताती है कि विक्रय को कब पूर्ण माना जाएगा। यह केवल एक दस्तावेज को पंजीकृत होने पर, एक निश्चित तिथि से प्रभावी होने की अनुमति देती है

(1) ए.आई.आर. (1910) इला. 199.

(2) ए.आई.आर. (1926) इला. 549.

जो उसके पंजीकृत होने की तिथि से पहले की हो सकती है। इस धारा का उद्देश्य यह निर्णय लेना है कि एक ही संपत्ति के संबंध में दो या दो से अधिक पंजीकृत लिखतों में से कौन सा प्रभावी होगा। यह धारा किसी दस्तावेज पर केवल उसके पंजीकृत होने के बाद ही लागू होती है। इसका पंजीकरण के पूर्ण होने से कोई लेना-देना नहीं है और इसलिए, जब लिखत विक्रय का हो, तो इसका विक्रय के पूर्ण होने से भी कोई संबंध नहीं है। एक विक्रय, जिसके बारे में यह स्वीकार किया गया है कि वह तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि विक्रय लिखत का पंजीकरण पूर्ण न हो जाए, उसे केवल इसलिए पहले पूर्ण हुआ नहीं कहा जा सकता क्योंकि धारा 47 के आधार पर वह लिखत, जिसके द्वारा यह विक्रय किया गया है, पंजीकृत होने के बाद पिछली तिथि से प्रभावी होने लगता है। इसलिए, हमारा यह मानना नहीं है कि धारा 47 के आलोक में इस मामले में विक्रय को 31 जनवरी, 1946 को पूर्ण हुआ कहा जा सकता है। पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 के संबंध में हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, वही दृष्टिकोण 'तिलकधारी सिंह बनाम गौर नारायण'[1] में भी अपनाया गया प्रतीत होता है। हमारा मानना है कि यही विचार 'नरेशचंद्र दत्त बनाम गिरीशचंद्र दास'[2] और 'गोवर्धन बर बनाम गुना धर[3] बर' में भी व्यक्त किया गया था।

विद्वान महान्यायावादी द्वारा भरोसा किए गए दो मामलों के संबंध में यह गौर किया जाना चाहिए कि वे संपत्ति के विक्रय पर उत्पन्न होने वाले शुफा के अधिकार से संबंधित नहीं थे। 'बिंदेश्वरी प्रसाद' का मामला[4] 'ज़र-ए-चहारुम' के एक वाद से संबंधित था। रिपोर्ट से यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह अधिकार क्या था या वह कब उत्पन्न हुआ था। इसलिए, उससे अधिक सहायता प्राप्त करना संभव नहीं है। 'गोपाल राम' का मामला[5] पट्टे दिए जाने

(1) ए.आई.आर. (1921) पट. 150.

(2) (1935) आई.एल.आर. 62 कल. 979

(3) आई.एल.आर. (1940) 2 कल. 270

(4) ए.आई.आर. (1916) इला. 199.

(5) ए.आई.आर. (1926) इला. 549.

पर उत्पन्न होने वाले शुफा के अधिकार से संबंधित था और प्रश्न यह था कि क्या ऐसे अधिकार को लागू करने के लिए दायर वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस वाद में अनुच्छेद 120 लागू किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि शुफा के अधिकार के प्रयोग के लिए वाद-कारण पट्टे के निष्पादित होते ही उत्पन्न हो गया था, यहाँ तक कि उसके पंजीकृत होने से पहले भी, हालांकि वास्तविक पंजीकरण से पहले शुफा के लिए वाद को कायम नहीं रखा जा सकता था।

यह दृष्टिकोण पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 पर भरोसा करते हुए अपनाया गया था। हमें यह ज्ञात नहीं है कि उस मामले में लागू शुफा का कानून यह अपेक्षा करता था कि शुफा के अधिकार को लागू करने से पहले पट्टा पूर्ण होना चाहिए। यदि वह कानून ऐसी अपेक्षा करता था, तो हम नहीं मानते कि उस मामले का निर्णय सही ढंग से किया गया था। उस मामले में यह कहा गया था कि "जब कानून ने किसी लेनदेन को भूतलक्षी प्रभाव दिया है, तो उसका वह प्रभाव होना ही चाहिए"। हम नहीं मानते कि किसी ऐसे लेनदेन के बारे में, जो पूर्ण होने पर भूतलक्षी प्रभाव रखता है, केवल उस कारण से यह कहा जा सकता है कि वह उस तिथि को पूर्ण हुआ था जिस तिथि से वह प्रभावी होता है।

हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसके आलोक में इस मामले में विक्रय लिखत की व्याख्या के प्रश्न पर चर्चा करना आवश्यक नहीं है, अर्थात यह तय करना कि इसके सही पठन के अनुसार क्या हस्तांतरण इसके निष्पादन पर तुरंत प्रभावी होना था या बाद में जब क्रय राशि के शेष का भुगतान हो जाए। और न ही हम विद्वान महान्यायावादी के उस दूसरे तर्क पर अपना मत देना आवश्यक समझते हैं कि ऐसा हस्तांतरण जो संपत्ति को तुरंत हस्तांतरित नहीं करता, वह केवल हस्तांतरण का एक करार हो सकता है।

हमारा मानना है कि इन कारणों से इस अपील को खारिज किया जाना चाहिए और हम तदनुसार आदेश देते हैं। अपीलकर्ता इस अपील की लागत का भुगतान करेंगे।

अय्यंगर, न्यायाधीश— हमें खेद है कि हम इस अपील को खारिज करने के आदेश से सहमत होने में असमर्थ हैं।

तथ्यों को न्यायमूर्ति सरकार के निर्णय में बहुत विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, इसलिए उन्हें दोहराना अनावश्यक है।

निम्नलिखित बातें निर्विवाद हैं: (1) अपीलकर्ता के अधिकार को नियंत्रित करने के लिए लागू कानून शुफा का कानून है जैसा कि मुस्लिम कानून में समझा जाता है। (2) मुस्लिम कानून के सिद्धांतों के अनुसार, शुफा का अधिकार एक वैध और वास्तविक विक्रय के पूर्ण होने पर तुरंत उत्पन्न होता है और इसके लिए दो 'तलब' किया जाना आवश्यक है। (3) शुफा के अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा की जाने वाली दोनों 'तलब' अपीलकर्ता द्वारा की गई हैं। चूंकि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि विक्रय हुआ था, इसलिए अपील में विवाद का एकमात्र बिंदु यह है कि क्या 2 फरवरी, 1946 को की गई 'तलब' अपीलकर्ता द्वारा शुफा का अधिकार मिलने के बाद की गई थी (अर्थात उत्तरदाता के पक्ष में विक्रय प्रभावी होने के बाद) या वे समय से पूर्व थीं।

एक समय में इस बात को लेकर विवाद था कि क्या मुस्लिम कानून के सिद्धांत उस समय को निर्धारित करेंगे जब एक विक्रय को पूर्ण माना जाना चाहिए (जिस व्यवस्था के तहत विक्रय के दो तत्वों, अर्थात प्रतिफल के भुगतान और कब्जे के परिदान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता था) या क्या संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के लागू होने के बाद किसी को यह निर्धारित करने के लिए कानून और उसके द्वारा निर्धारित मानदंडों की ओर देखना होगा कि विक्रय कब हुआ माना जाना चाहिए। बहुमत द्वारा यह पूर्व दृष्टिकोण इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा 'बेगम बनाम मुहम्मद'[(1)] मामले में अपनाया गया था, जिसमें न्यायमूर्ति बनर्जी ने बहुमत से असहमति जताई थी। हालाँकि, यह विवाद अब बहुत पुराना हो चुका है और इस न्यायालय द्वारा 'राधा किशन बनाम श्री धर राम चंद्र'[(2)] मामले में यह

(1) आई.एल.आर. 16 इला. 344.

(2) [1961] एस.सी.आर. 248

निर्णय लिया जा चुका है कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधान विक्रय के संबंध में मुस्लिम कानून के सिद्धांतों का स्थान लेते हैं और शुफा का अधिकार उत्पन्न करने के लिए विक्रय पूर्ण हुआ है या नहीं, और यदि हुआ है तो कब, यह जानने के लिए कानून को ही देखा जाना चाहिए।

अब संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों की ओर मुड़ते हुए, 100 रुपये या उससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति के विक्रय के मामले में (जैसा कि हमारे समक्ष मामला है), अधिनियम की धारा 54 यह अधिनियमित करती है कि इसे केवल एक पंजीकृत लिखत द्वारा ही प्रभावी किया जा सकता है; विक्रय को स्वयं "भुगतान किए गए या वादा किए गए मूल्य, या आंशिक भुगतान और आंशिक वादे के बदले स्वामित्व के हस्तांतरण" के रूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे शब्दों में, विक्रय के लेन-देन का सार स्वामित्व के हस्तांतरण में निहित है और इस हस्तांतरण को "एक पंजीकृत लिखत" द्वारा प्रभावी किया जाना आवश्यक है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, लेखन और पंजीकरण की औपचारिकताओं को निर्धारित करते हुए भी, स्वयं उस समय को निर्धारित नहीं करता है जब एक विक्रय पूर्ण हो जाता है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत "पंजीकृत" का अर्थ है: "दस्तावेजों के पंजीकरण को विनियमित करने वाले तत्कालीन लागू कानून के तहत पंजीकृत" (धारा 3)। जब कोई पंजीकरण अधिनियम की ओर मुड़ता है, तो अन्य बातों के साथ-साथ, उस समय के लिए प्रावधान किया गया है जिसके भीतर किसी दस्तावेज को उसके निष्पादन के बाद पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है, वे व्यक्ति जो इसे प्रस्तुत कर सकते हैं, वह कार्यालय जिसमें दस्तावेज को वैध रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है और पंजीकरण प्रभावी किया जा सकता है। धारा 58 से शुरू होने वाला भाग 11 का उप-भाग 'बी' दस्तावेजों को पंजीकरण के लिए स्वीकार करने की प्रक्रिया से संबंधित है। धारा 60(1) यह अधिनियमित करती है:

"धारा 34, 35, 58 और 59 के ऐसे प्रावधानों का, जो पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किसी भी दस्तावेज पर लागू होते हैं, अनुपालन कर दिया गया हो, तब पंजीकरण अधिकारी उस पर एक प्रमाण पत्र पृष्ठांकित करेगा जिसमें 'पंजीकृत' शब्द के साथ उस पुस्तक की संख्या और पृष्ठ का उल्लेख होगा जिसमें दस्तावेज की प्रतिलिपि बनाई गई है।"

और इसके बाद आने वाली धारा 61 सार्वजनिक रजिस्टरों में दस्तावेजों की प्रतिलिपि बनाने का प्रावधान करती है जिससे "पंजीकरण" शब्द की उत्पत्ति हुई है और यह अधिनियमित करती है:

"61. (1). धारा 59 और 60 में निर्दिष्ट और उल्लेखित पृष्ठांकन और प्रमाण पत्र तदुपरि रजिस्टर-पुस्तिका के हाशिये में कॉपी किए जाएंगे, और धारा 21 में उल्लेखित मानचित्र या योजना की प्रति (यदि कोई हो) पुस्तक संख्या 1 में फाइल की जाएगी।

(2) तदुपरि दस्तावेज का पंजीकरण पूर्ण माना जाएगा, और दस्तावेज तब उस व्यक्ति को वापस कर दिया जाएगा जिसने उसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया था, या ऐसे अन्य व्यक्ति को (यदि कोई हो) जिसे उसने धारा 52 में उल्लेखित रसीद पर उस संबंध में लिखित रूप में नामित किया हो।"

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा और वास्तव में उच्च न्यायालय के निर्णय में भी, धारा 61 की उप-धारा (2) में आने वाले शब्दों "दस्तावेज़ का पंजीकरण तदुपरि पूर्ण माना जाएगा" पर बहुत भरोसा किया गया है। लेकिन जिन धाराओं के समूह में यह आता है, उसके संदर्भ में यह स्पष्ट है कि यह इस तथ्य को संदर्भित करता है कि पंजीकरण अधिकारी ने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया था और उसके पास उसे प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ के संबंध में, मूल दस्तावेज़ को प्राप्त करने के हकदार पक्ष को वापस करने के अलावा, अब और कुछ करना शेष नहीं था। हमारी राय में, इन शब्दों का उस समय से कोई लेना-देना नहीं है जब से पंजीकृत दस्तावेज के दायरे में आने वाला लेनदेन प्रभावी

होता है, और न ही वर्तमान संदर्भ के संबंध में इसका इस बात से कोई लेना-देना है कि विलेख द्वारा साक्ष्यित विक्रय कब पूर्ण होता है। इनके लिए पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 में विशिष्ट प्रावधान किया गया है, जो इस प्रकार है:

> "एक पंजीकृत दस्तावेज उस समय से प्रभावी होगा जब से वह प्रभावी होना शुरू होता यदि उसके पंजीकरण की आवश्यकता न होती या पंजीकरण न कराया गया होता, न कि उसके पंजीकरण के समय से।"

धारा 61(2) और धारा 47 के अंतर्निहित सिद्धांत परस्पर भिन्न नहीं हैं. ऐसा नहीं है कि पंजीकरण अधिकारी द्वारा अपने कार्यालय में काम के दबाव या अन्य कारणों से किए गए किसी भी विलंब का पक्षों के अधिकारों, उनकी संपत्ति या उस समय पर कोई प्रभाव पड़ता है जब से विलेख प्रभावी होता है, या लेनदेन की प्रभावशीलता, या आपस में लेनदेन की प्राथमिकता पर कोई असर पड़ता है. ऐसा भी नहीं है कि अलग-अलग तिथियों पर निष्पादित दस्तावेजों के संबंध में—जहाँ पक्ष उन्हें अलग-अलग समय पर प्रभावी करने का आशय रखते हों—उनके आशय पंजीकरण अधिकारी की कार्रवाई या निष्क्रियता, या उसके कार्यालय में होने वाले किसी विलंब के कारण संशोधित या शून्य हो जाते हों. यह तर्क कि हालांकि विक्रय का मुस्लिम कानून संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम और पंजीकरण अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, फिर भी पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 के प्रावधान यह निर्धारित करने के लिए लागू नहीं हैं कि एक पंजीकृत लिखत द्वारा किया गया विक्रय कब पूर्ण माना जाना चाहिए, किसी भी सिद्धांत, तर्क या निश्चित रूप से कानूनों की व्याख्या के किसी भी नियम पर टिक नहीं सकता. हमारी राय में, ऐसे विक्रय जो प्रभावी है और जो पूर्ण है, के बीच कोई अंतर करना संभव नहीं है क्योंकि ये एक ही अवधारणा को व्यक्त करने के केवल अलग-अलग रूप हैं; और इसी कारण से, उस समय के बीच भी कोई अंतर नहीं है जब से एक विक्रय प्रभावी होता है और जब उसे पूर्ण माना जाना चाहिए. चूंकि मुस्लिम कानून के तहत तलब केवल तभी की जानी होती है जब पूर्व-क्रयाधिकारी को

विक्रय की सूचना प्राप्त होती है, पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 की प्रयोज्यता के संबंध में हमारा जो दृष्टिकोण है, वह इस विकल्प के प्रयोग में कठिनाई का कोई तत्व उत्पन्न नहीं करता है. अतः, यदि पंजीकरण अधिनियम की धारा 47 यह निर्धारित करने के लिए लागू होती है कि पंजीकृत दस्तावेज़ किस समय से प्रभावी होगा या दूसरे शब्दों में, वह समय जब से विक्रय को पूर्ण माना जाना चाहिए, तो पक्षों का आशय ही एकमात्र और निर्णायक परीक्षण होगा। इसे स्वयं दस्तावेज़ के संदर्भ में और आस-पास की परिस्थितियों के आलोक में समझा जाना चाहिए, हालांकि इस शर्त के साथ कि यदि दस्तावेज़ स्पष्ट है और उसकी शर्तें सुस्पष्ट हैं, तो उनके विरुद्ध कोई भी साक्ष्य स्वीकार्य नहीं होगा। 31 जनवरी, 1946 के इस विक्रय-विलेख (प्रदर्श 'ए') की चौथी कंडिका इसके प्रतिफल का विवरण देता है। इसमें कुल 2,000 रुपये की राशि शामिल थी। इसमें उल्लेख है कि विक्रेताओं को दस्तावेज़ के निष्पादन के समय नकद 400 रुपये प्राप्त हुए थे, और 200 रुपये एक पिछले दखल-बंधकदार को भुगतान करने के लिए क्रेता के पास छोड़ दिए गए थे। शेष 1,400 रुपये के संबंध में विवरण इस प्रकार है:

> "...और शेष 1,400 रुपये की राशि विनिमय के समय, (अर्थात) इस विलेख की रसीद सौंपने के समय नकद प्राप्त कर ली है। इस प्रकार हमने इस विक्रित संपत्ति के प्रतिफल की पूरी राशि दावेदार से प्राप्त कर ली है और उसे अपने अधिकार तथा उपयोग में ले लिया है।"

यह निस्संदेह सच है कि दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि, 31 जनवरी, 1946 को 1,400 रुपये की राशि प्राप्त नहीं हुई थी और यह सहमति बनी थी कि उस राशि का भुगतान पंजीकरण के लिए प्रस्तुत विक्रय-विलेख के संबंध में पंजीयक से प्राप्त रसीद सौंपने के बदले में किया जाएगा। लेकिन भूतकाल के प्रयोग से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि विक्रेता ने 31 जनवरी, 1946 को दस्तावेज़ के निष्पादन के प्रतिफल के रूप में 1,400 रुपये के शेष भुगतान के वादे को वास्तविक भुगतान के समान ही स्वीकार कर लिया था। दूसरे शब्दों में, संपत्ति

हस्तांतरण अधिनियम की धारा 54 की शब्दावली में, यह एक ऐसा लेनदेन था जिसके तहत घर की संपत्ति का हस्तांतरण "आंशिक भुगतान और आंशिक वादे" के बदले में किया जाना था। कंडिका 4 और उसमें दिया गया विवरण किसी ऐसे आशय का संकेत नहीं देते कि संपत्ति का स्वत्व केवल पंजीकरण रसीद सौंपने पर 1,400 रुपये के भुगतान के बाद ही हस्तांतरित किया जाना था। यदि, हालांकि, इस बारे में कोई संदेह था कि पक्षों का आशय क्या था, तो इसे बाद में आने वाली अन्य शर्तों और विवरणों द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है। कंडिका 5 इन शब्दों के साथ शुरू होता है:

> "प्रतिफल की पूरी राशि प्राप्त होने पर हमने उक्त दावेदार को हमारे और हमारे वारिसों तथा प्रतिनिधियों के स्थान पर इस विक्रित संपत्ति का पूर्ण स्वामी के रूप में कब्ज़ा और अधिभोग सौंप दिया है।"

यहाँ रसीद का संदर्भ स्पष्ट रूप से 2,000 रुपये के संपूर्ण प्रतिफल को दस्तावेज़ के निष्पादन के दिन ही प्राप्त मान लेने पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, प्रतिफल का एक हिस्सा भुगतान किया गया था और एक हिस्से का वादा किया गया था, और उस वादे को ही शेष अदत्त राशि के संबंध में प्रतिफल मान लिया गया था। इसके अलावा, और जैसे कि अपने आशय को और सुदृढ़ करने के लिए, विलेख में हस्तांतरण के शब्दों के बाद आगे कहा गया है, "मैंने पूर्ण विक्रय का विलेख निष्पादन कर दिया है और मुख्य भाग में दिए गए विवरण के अनुसार संयुक्त रूप से 2,000 रुपये प्राप्त कर लिए हैं"।

क्रेता के स्वत्व को दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि के बाद किसी भी अन्य तिथि तक स्थगित नहीं किया जाना था, यह कंडिका 5 के इन आगे के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है — "यह वांछित है कि उक्त दावेदार विक्रित संपत्ति में पूर्ण स्वामी के रूप में प्रवेश करे और उसके कब्जे तथा अधिभोग में रहे"— जो विलेख के निष्पादन की तिथि से और उसके बाद प्रभावी होना था। इसके बाद कंडिका 6 की ओर मुड़ते हुए, इसमें एक स्पष्ट शर्त दी गई है कि हस्तांतरण कब से प्रभावी माना जाना चाहिए। इसमें कहा गया है: "यह विक्रय-विलेख उस

तिथि से प्रभावी होता है जब हमने, निष्पादनकर्ताओं ने, इस पर अपने हस्ताक्षर किए थे"—यह एक ऐसा विवरण है जिसे कंडिका 7 द्वारा दोहराया और सुदृढ़ किया गया है, जिसमें विक्रेताओं के स्वत्व के संबंध में कहा गया है कि विक्रित संपत्ति के संबंध में उक्त स्वत्व "समाप्त, निष्प्रभावी और शून्य हो गया है और वही अब दावेदार को हस्तांतरित कर दिया गया है और उसके द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया है"। इन विवरणों, अनुबंधों और शर्तों के सामने, जो स्पष्ट रूप से पक्षों के उस आशय को व्यक्त करते हैं कि विलेख अपने निष्पादन की तिथि से प्रभावी होना चाहिए, हमें यह तर्क शायद ही स्वीकार्य लगता है कि इसे किसी बाद की तिथि तक स्थगित किया जा सकता था—चाहे वह तिथि जब भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 61 के प्रावधानों के तहत पंजीकरण पूर्ण हुआ हो, या 7 फरवरी, 1947 की तिथि जब क्रेता को पंजीकरण रसीद सौंपे जाने पर विक्रेता को 1,400 रुपये की शेष राशि प्राप्त हुई थी।

यदि यही विलेख का वास्तविक कानूनी प्रभाव था और यदि भारतीय पंजीकरण अधिनियम के साथ पठित संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर, 31 जनवरी, 1946 को दस्तावेज़ के निष्पादन के तुरंत बाद संपत्ति का स्वत्व क्रेता को हस्तांतरित हो गया था, तो 2 फरवरी, 1946 को अपीलकर्ता द्वारा की गई दोनों तलब समय पर, कानूनी, उचित और प्रभावी होंगी जिससे उन्हें अपने पक्ष में हस्तांतरण की मांग करने का अधिकार प्राप्त हो सके। यह जोड़ना केवल आवश्यक है कि उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने इस स्थिति का विरोध नहीं किया कि यदि विक्रय-विलेख (प्रदर्श 'ए') की उचित व्याख्या करने पर—इसके विवरणों और संबंधित वैधानिक प्रावधानों के आलोक में—31 जनवरी, 1946 को प्रभावी विक्रय हुआ था, तो अपीलकर्ता द्वारा की गई तलब उसे वह अधिकार दिलाने के लिए पर्याप्त होगी जिसका उसने उस वाद में दावा किया है जिससे यह अपील उत्पन्न हुई है।

हम तदनुसार अपील स्वीकार करेंगे और उसके वाद को सर्वत्र लागत सहित डिक्री करेंगे।

न्यायालय द्वारा— बहुमत की राय के अनुसार, अपील लागत के साथ खारिज की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।